विचार बिन्दु

अकर्मण्यता के जीवन से यशस्वी जीवन और यशस्वी मृत्यु श्रेष्ठ होती है। –चंद्रशेखर वेंकट रमण

क्या चुनाव अप्रासंगिक होते जा रहे हैं?

इस लेख का शीर्षक पाठकों को बड़ा अटपटा लग सकता है, किंतु शायद निम्न विवरण को पढ़कर इस बात से वे कुछ हद तक सहमत हो सकते हैं। लोकतंत्र की आत्मा, चुनाव है और उसी के आधार पर यह निर्धारित होता है कि किसे जनता के बहुमत का समर्थन प्राप्त है? बहुमत प्राप्त दल और उसके प्रतिनिधि सत्ता संभालते हैं, चाहे वह देश की हो, राज्य की, पंचायत संस्थाओं की अथवा शहरी निकायों की। इस वर्ष हम स्वतंत्रता के 80 वें वर्ष में प्रवेश कर जाएंगे। इतने समय में लोकतंत्र की जड़ें मजबूत हो जानी चाहिए थीं। वास्तविकता निम्न विश्लेषण से स्पष्ट होगी।

भारत में वर्तमान में कुल 2593 राजनीतिक दल चुनाव आयोग में पंजीकृत हैं। इनमें से 6 दल राष्ट्रीय दल के रूप में तथा 67 राज्य स्तरीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त हैं । इनके अलावा 2520 ऐसे दल हैं जो पंजीकृत तो हैं किंतु वे मान्यता प्राप्त नहीं हैं।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इतने दलों के पंजीकरण होने के बाद और नियमित रूप से चुनाव होने के बावजूद ऐसा क्यों कहा जा रहा है कि भारत में चुनाव अप्रासंगिक होते जा रहे हैं?

बिहार चुनाव से प्रारंभ हुआ एस आई आर (स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन)अब पूरे देश में हो रहा है। इसके आधार पर बनी मतदाता सूचियों के आधार पर पांच राज्यों के चुनाव भी हो चुके हैं जिनमें पश्चिम बंगाल भी सम्मिलित है। एस आई आर के माध्यम से पूरे देश की मतदाता सूचियां को दोबारा बनाया गया है। इससे पूर्व समय समय पर नियमित रूप से चुनाव आयोग, मतदाता सूचियों का पुनरीक्षण करता रहा है। इसके माध्यम से जिन व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है उनके नाम हटा दिए जाते हैं तथा जो 18 वर्ष से अधिक आयु के हो जाते हैं उनके नाम जोड़ने का काम किया जाता है। यह काम कई वर्षों से देश में चल रहा था। अचानक, बिहार चुनाव से पूर्व चुनाव आयोग ने स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन का काम प्रारंभ कर दिया ।कानून और नियमों के अनुसार ऐसा करने का अधिकार चुनाव आयोग को है किंतु यह तभी कराया जा सकता है जब कोई विशेष परिस्थितियां हों। देश में क्या विशेष परिस्थितियां थीं, इसका कोई विवरण चुनाव आयोग ने सार्वजनिक नहीं किया । भाजपा द्वारा बार-बार यह कहा जा रहा था कि बड़ी संख्या में बांग्लादेश से आए घुसपैठियों के नाम मतदाता सूचियों में आ गए हैं, जिन्हें मतदाता सूचियों से हटाना आवश्यक है क्योंकि मतदान करने का अधिकार उसी को होता है जो भारत का नागरिक है। नागरिकता सिद्ध करना सरल कार्य नहीं है। जिस प्रकार के दस्तावेज चुनाव आयोग ने मतदाता सूची में नाम अंकित करने के लिए मांगे, वे हजारों-लाखों लोगों के लिए प्राप्त करना बहुत ही परेशानी का कारण बना। लाखों लोग तो अंत तक यह दस्तावेज प्राप्त नहीं कर पाए और इसका परिणाम यह हुआ कि अब तक जिन राज्यों में एस आई आर हुआ, वहां लगभग 6 करोड लोगों के नाम मतदाता सूची से हटा दिए गए। इसी अनुपात में देखा जाए तो पूरे देश में एस आई आर पूरी होने तक लगभग 10 करोड़ व्यक्तियों के नाम मतदाता सूचियों से हटा दिए जाएंगे।

यह पहली बार हुआ जब मतदाताओं से अपनी नागरिकता सिद्ध करने के लिए कहा गया। अब तक यह जिम्मेदारी चुनाव आयोग की थी कि वह प्रत्येक वैध मतदाता का नाम निर्वाचन सूची में अंकित करे। इस बार प्रक्रिया को उलट देने से, सारा भार संबंधित मतदाता पर डाल दिया गया। इस कारण अनेक लोग इस अधिकार से वंचित रह गए।

यह उल्लेखनीय है कि सर्वोच्च न्यायालय की प्रारंभिक सलाह के बावजूद आधार कार्ड तक को एक वैध दस्तावेज के रूप में नहीं माना गया। वैसे तो पुनरीक्षण का काम नियमित रूप से चुनाव आयोग करता रहा है, किंतु इस बार सारी मतदाता सूचियां को नई तरह से बनाया गया है। एस आई आर की संवैधानिकता और इसकी प्रक्रियागत अव्यावहारिकता के बारे में मैंने पहले भी इसी संपादकीय स्तंभ में विस्तार से लिखा है।

विपक्षी दलों का आरोप है कि एस आई आर के माध्यम से, विशेष रूप से अल्पसंख्यक वर्ग के अनेक मतदाताओं के नाम काट दिए गए हैं। इस प्रकार की कार्यवाही से कुछ-कुछ ऐसा लगता है कि सत्ताधारी दल तय करेगा कि मतदाता कौन होगा, जबकि होना यह चाहिए कि मतदाता मिलकर तय करें कि सरकार कौन बनाएगा?

राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, जिसके नेता अजित पवार पर प्रधानमंत्री ने 70000 करोड़ के घोटाले का आरोप लगाया, उसे भाजपा सरकार में उप मुख्यमंत्री बना दिया गया। उन्होंने एनसीपी को तोड़कर भाजपा को समर्थन दे दिया था। यही हाल आम आदमी पार्टी का हुआ जिसके 9 में से 6 राज्यसभा सांसदों ने आम आदमी पार्टी का दामन छोड़ कर एनडीए सरकार को समर्थन दे दिया। इस दल बदल से ठीक पहले 'आप' के सांसद अशोक मित्तल के विरुद्ध ईडी के माध्यम से कार्रवाई प्रारंभ की गई थी, जिसे अब ठंडे बस्ती में डाल दिया गया है।

हाल ही में पश्चिम बंगाल के विधानसभा चुनाव में भी लाखों ऐसे लोग मतदान के अधिकार से वंचित रह गए जिनके नाम में कुछ तकनीकी अशुद्धियां थीं। सर्वोच्च न्यायालय के एक माननीय न्यायाधीश ने तो सुनवाई के दौरान यहां तक कह दिया कि यदि कुछ सही मतदाताओं के नाम इस बार मतदाता सूची में नहीं जुड़ पाए तो वे अगले चुनाव में तो मत देने के अधिकारी तो हो ही जाएंगे। इस प्रकार का वक्तव्य दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है।

जब कुछ स्वैच्छिक संगठनों और राजनैतिक दलों ने एस आई आर की संवैधानिकता को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी तो वहां पर भी उनकी बात को नहीं माना गया। न्यायालय ने इसे चुनाव आयोग का अधिकार मानते हुए इस संबंध में दायर याचिकाओं को खारिज कर दिया। अब विभिन्न राजनीतिक दलों के पास इसके विरुद्ध कोई उपचार नहीं बचा है ।

यह तो हुई, चुनाव से पूर्व और चुनाव के दौरान की बात। एस आई आर और अन्य कई हथकंडे अपनाने के बाद भी यदि पर्याप्त सीटें नहीं जीत पाए तो भाजपा ने चुनाव हार जाने के बाद भी सत्ता में बने रहने का नायाब तरीका निकाल लिया है। गत लोकसभा चुनाव में साधारण बहुमत के लिए आवश्यक 240 सीटें भी बीजेपी नहीं जीत पाई, इसके बावजूद उसने अन्य दलों के समर्थन से बहुमत वाली सरकार बनाई। अब तो वह लोकसभा में दो तिहाई अर्थात 360 की संख्या के नजदीक पहुंच गई है। वह लोकसभा और राज्यसभा दोनों में विभिन्न विपक्षी दलों के सांसदों को विभाजित करके और उनका समर्थन एनडीए के लिए हासिल करने में सफल रही है।

वैसे भी पार्टियों को तोड़ने और उन्हें अपने समर्थन में लाने के काम में भाजपा के नेताओं ने विशेषज्ञता हासिल कर ली है। इसके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं:–

2016 में पूर्वोत्तर के एक राज्य अरुणाचल प्रदेश में मुख्यमंत्री प्रेम खांडू के नेतृत्व में पीपुल्स पार्टी ऑफ अरुणाचल प्रदेश, भाजपा में विलय हो गई थी। इस प्रकार बिना कोई सीट जीते , रातों - रात वहां भाजपा सरकार बना ली गई।

2019 में गोवा में कांग्रेस के 15 में से 10 विधायकों को भाजपा में शामिल कर लिया गया और अपनी सरकार बना ली।

2020 में मणिपुर में कई कांग्रेसी और स्थानीय विधायक भारतीय जनता पार्टी में शामिल हो गए और वहां भाजपा की सरकार बन गई।

भाजपा की छवि कुछ इस प्रकार की बन गई है कि विपक्षी दलों के सांसदों और विधायकों को तोड़ कर भाजपा में शामिल कर लिया जाय या उनका समर्थन प्राप्त कर लिया जाय।

महाराष्ट्र में शिवसेना को तोड़कर शिंदे गुट को अपने में शामिल कर लिया गया और अब वही असली शिवसेना हो गई। उद्धव गुट के सांसदों को भी शिवसेना से तोड़ लिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय में लंबे समय तक सुनवाई भी हुई किंतु अंततः सर्वोच्च न्यायालय ने भी इस विभाजन को सही मान लिया। अब तो शिवसेना के संस्थापक बाल ठाकरे के पुत्र उद्धव ठाकरे की शिवसेना नाम मात्र की रह गई है।

राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, जिसके नेता अजित पवार पर प्रधानमंत्री ने 70000 करोड़ के घोटाले का आरोप लगाया, उसे भाजपा सरकार में उप मुख्यमंत्री बना दिया गया। उन्होंने एनसीपी को तोड़कर भाजपा को समर्थन दे दिया था। यही हाल आम आदमी पार्टी का हुआ जिसके 9 में से 6 राज्यसभा सांसदों ने आम आदमी पार्टी का दामन छोड़ कर एनडीए सरकार को समर्थन दे दिया। इस दल बदल से ठीक पहले 'आप' के सांसद अशोक मित्तल के विरुद्ध ईडी के माध्यम से कार्रवाई प्रारंभ की गई थी, जिसे अब ठंडे बस्ती में डाल दिया गया है।

पश्चिम बंगाल में तो दल बदल की सारी मर्यादाओं को तोड़ दिया है। तृणमूल कांग्रेस के 29 में से 20 सांसद एनडीए के समर्थन में आ गए हैं । एक समय जिस शिवेन्दु अधिकारी को भाजपा भ्रष्टतम मंत्री बताया करती थी और प्रधानमंत्री मोदी स्वयं उसके भष्टाचार की एक्टिंग चुनाव सभाओं में करते थे, उसी को अब भाजपा सरकार का मुख्यमंत्री बना दिया गया है। संकेत स्पष्ट है। आप यदि विपक्ष में हैं, तो भ्रष्ट हैं, और जैसे ही भाजपा में शामिल होंगे आप ईमानदारी के पुतले हो जाएंगे और आपके विरुद्ध सारी कार्यवाही समाप्त कर दी जाएगी। ओडिशा में बीजू जनता दल, सत्ता में सालों तक रही और केंद्र में एनडीए का समर्थन करती रही। जैसे ही अवसर मिला, गत चुनाव में भारतीय जनता पार्टी ने ओडिशा में सरकार बना ली और बीजू जनता दल का एक प्रकार से सफाया ही कर दिया ।

प्रधानमंत्री द्वारा शुरू में कई बार सार्वजनिक सभाओं में कांग्रेस मुक्त भारत की बात कही जाती थी, किंतु अब तो ऐसा लगता है कि उन्होंने विपक्ष मुक्त भारत का अभियान प्रारंभ कर दिया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सारी ताकत भाजपा के नेताओं ने झोंक दी है। जहां कहीं विपक्ष की सरकार बन भी जाए तो वहां के नेताओं पर जांच एजेंसी जैसे सीबीआई, इडी आदि के माध्यम से कार्रवाई प्रारंभ कर दी जाए ताकि वे स्वयं कुछ समय बाद परेशान होकर भाजपा में सम्मिलित हो जाएं या समर्थक बन जाएं।

वह समय दूर नहीं है जब भाजपा चुनाव जीते या ना जीते, सरकार उसी की बनेगी और उसका विरोध करने वाला विपक्ष भी नाम मात्र का बचेगा।

विरोध के अभाव में सत्ताधारी दल की निरंकुशता बढ़ेगी। कई अंतरराष्ट्रीय विश्लेषकों द्वारा इस स्थिति को 'चुनावी तानाशाही' का नाम दिया गया है। भारत को भी इसी श्रेणी में शामिल किया गया है। इस स्थिति पर नियंत्रण तभी संभव है जब जिस दल के टिकट पर कोई व्यक्ति जीते और वह अपनी प्रतिबद्धता बदल ले तो उसकी सदस्यता तत्काल समाप्त मानी जाय।

वर्तमान स्थिति देश के भविष्य के लिए शुभ संकेत नहीं है। कहीं ऐसा न हो, कि देश में चुनाव ही नहीं, लोकतंत्र ही अप्रासंगिक हो जाय।

–अतिथि सम्पादक,
राजेन्द्र भाणावत
(पूर्व आई.ए.एस. अधिकारी)

दीक्षांत समारोह में पूर्व कुलपतियों की उपस्थिति

प्रो. अशोक कुमार

विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोह में पूर्व कुलपतियों की उपस्थिति, आमंत्रण और उनकी अनुपस्थिति एक ऐसा विषय है जो केवल औपचारिकता या शिष्टाचार तक सीमित नहीं है। यह विश्वविद्यालयों की आंतरिक राजनीति, सत्ता के हस्तांतरण, व्यक्तिगत अहंकार और अकादमिक संस्कृति के गहरे अंतर्विरोधों को दर्शाता है। अक्सर यह देखा गया है कि दीक्षांत समारोहों में या तो पूर्व कुलपतियों को वरीयता क्रम में वह स्थान नहीं मिलता जिसके वे हकदार हैं, या फिर आमंत्रण मिलने के बावजूद वे खुद को इन समारोहों से दूर रखते हैं। इसके पीछे कोई एक एकल कारण नहीं है, बल्कि यह प्रशासनिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक और अकादमिक कारणों का एक जटिल मिश्रण है।

दीक्षांत समारोह मे वर्तमान बनाम भूतपूर्व कुलपति की उपस्थिति,पूरी तरह से एक आधिकारिक और कड़े प्रोटोकॉल से बंधा हुआ आयोजन होता है। इसमें कुलाधिपति आमतौर पर राज्य के राज्यपाल या देश के राष्ट्रपति होते हैं, मुख्य अतिथि और वर्तमान कुलपतिकेंद्र बिंदु होते हैं। सरकारी और विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार, प्रोटोकॉल हमेशा पद पर बैठे व्यक्ति को प्राथमिकता देता है, न कि पूर्व में उस पद पर रहे व्यक्ति को। दीक्षांत समारोह के मंच पर स्थान बेहद सीमित होता है। वहाँ केवल कुलाधिपति, मुख्य अतिथि, वर्तमान कुलपति, रजिस्ट्रार और डीन को ही जगह मिलती है। पूर्व कुलपतियों को आम तौर पर सामने की दीर्घा में पहली या दूसरी पंक्ति में जगह दी जाती है। कई पूर्व कुलपतियों के लिए, जिन्होंने कभी उस पूरे समारोह की कमान संभाली थी, मंच के नीचे बैठना उनके आत्मसम्मान या अहंकार को ठेस पहुँचाता है।

जब एक नया कुलपति आता है, तो विश्वविद्यालय का पूरा प्रशासनिक अमला (रजिस्ट्रार, प्रॉक्टर, क्लर्क) नए बॉस को खुश करने में लग जाता है। ऐसे में पूर्व कुलपतियों को औपचारिक निमंत्रण पत्र तो भेज दिया जाता है, लेकिन जो व्यक्तिगत आदर या विशेष अनुवर्तीकॉल मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। इसे पूर्व कुलपति अपना अपमान समझते हैं और गरिमा बनाए रखने के लिए समारोह में नहीं आते।

भारत और कई अन्य देशों में विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की नियुक्ति एक बेहद राजनीतिक प्रक्रिया बन चुकी है। सरकार बदलने के साथ ही विश्वविद्यालयों के शीर्ष नेतृत्व की विचारधारा भी बदल जाती है। यदि किसी पूर्व कुलपति की नियुक्ति किसी एक राजनीतिक दल की सरकार के दौरान हुई थी और वर्तमान कुलपति की नियुक्ति दूसरी विचारधारा वाली सरकार ने की है, तो दोनों के बीच एक अदृश्य दूरी बन जाती है। वर्तमान प्रशासन पूर्व कुलपति को आमंत्रित करने में हिचकिचाता है क्योंकि उन्हें लगता है कि उनकी उपस्थिति से एक अलग राजनीतिक संदेश जा सकता है।

विश्वविद्यालयों के भीतर प्रोफेसरों और गैर-शिक्षण कर्मचारियों के अपने-अपने गुट होते हैं। कई बार पूर्व कुलपति का गुट वर्तमान कुलपति के काम में बाधा पहुँचाने की कोशिश करता है। ऐसे माहौल में, वर्तमान कुलपति कभी नहीं चाहेंगे कि उनका पूर्ववर्ती दीक्षांत समारोह जैसे बड़े मंच पर आकर लाइमलाइट बटोरे या कैंपस के भीतर अपने समर्थकों को दोबारा सक्रिय करे।

दीक्षांत समारोह में अक्सर मुख्यमंत्री, मंत्री या राज्यपाल आते हैं। यदि पूर्व कुलपति किसी विपक्षी दल के करीबी रहे हैं, तो उनकी उपस्थिति से एक असहज स्थिति पैदा हो सकती है। इसलिए, रणनीतिक रूप से उन्हें किनारे कर दिया जाता है। कार्यकाल का प्रभाव: बहुत अच्छा बनाम बहुत खराब कार्यकाल ! कार्यकाल का बहुत अच्छा या बहुत खराब होना इसका कारण हो सकता है? दोनों ही स्थितियाँ अनुपस्थिति या आमंत्रण न मिलने का कारण बनती हैं।

कार्यकाल का बहुत अच्छा होना (ईर्ष्या और असुरक्षा की भावना)यह सुनने में थोड़ा अजीब लग सकता है, लेकिन यदि किसी पूर्व कुलपति का कार्यकाल अभूतपूर्व रहा हो-उन्होंने बुनियादी ढांचे का विकास किया हो, शोध में विश्वविद्यालय को ऊंचाइयों पर पहुँचाया हो, और वे छात्रों व शिक्षकों के बीच बेहद लोकप्रिय रहे हों-तो यह वर्तमान कुलपति के लिए एक बड़ी चुनौती बन जाता है। वर्तमान कुलपति को लगता है कि यदि पूर्व कुलपति समारोह में आएंगे, तो पूरा परिसर उन्हीं की तारीफ करेगा और उनकी तुलना पूर्व कुलपति से की जाएगी। कोई भी मौजूदा प्रशासनिक प्रमुख यह नहीं चाहता कि उसके कार्यक्रम में कोई दूसरा व्यक्ति आकर्षण का केंद्र बने। जब पूर्व कुलपति दीक्षांत समारोह में आते हैं, तो अनौपचारिक बातचीत में लोग उनके समय के स्वर्ण काल को याद करने लगते हैं, जिससे वर्तमान प्रशासन असहज महसूस करता है।

यदि किसी पूर्व कुलपति का कार्यकाल भ्रष्टाचार के आरोपों, छात्र आंदोलनों, अकादमिक गिरावट या मुकदमों से घिरा रहा हो, तो परिस्थितियाँ पूरी तरह उलट जाती हैं। वर्तमान प्रशासन ऐसे विवादास्पद पूर्व प्रमुखों से दूरी बनाना चाहता है ताकि विश्वविद्यालय की छवि पर कोई आंच न आए। अगर कोई विवादास्पद पूर्व कुलपति समारोह में आता है, तो छात्र संगठन या शिक्षक संघ दीक्षांत समारोह के पवित्र और शांत माहौल में हंगामा या विरोध प्रदर्शन कर सकते हैं। इस कानून-व्यवस्था की स्थिति से बचने के लिए उन्हें आमंत्रित ही नहीं किया जाता, और यदि किया भी जाए, तो वे खुद किसी भी अप्रिय स्थिति या हूटिंग से बचने के लिए आने से मना कर देते हैं।

पद से हटने के बाद का मनोवैज्ञानिक बदलाव एक बहुत बड़ा कारक है जिसे अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। कुलपति का पद अत्यंत शक्तिशाली होता है। जब तक व्यक्ति पद पर रहता है, उसके आगे-पीछे गाड़ियाँ, सुरक्षाकर्मी और आदेशों का पालन करने वाले सैकड़ों लोग होते हैं। सेवानिवृत्ति के बाद, अचानक उस चकाचौंध का खत्म हो जाना मानसिक रूप से स्वीकार करना कठिन होता है। दीक्षांत समारोह में आकर अपनी ही पूर्व सल्तनत में एक सामान्य अतिथि की तरह बैठना कई पूर्व कुलपतियों के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से कष्टदायक होता है। अक्सर नए कुलपति आते ही पूर्ववर्ती की नीतियों, योजनाओं और नियुक्तियों को बदलना या रद्द करना शुरू कर देते हैं। जब एक पूर्व कुलपति देखता है कि उसके द्वारा बनाए गए विभागों या शुरू किए गए कोर्सेस को बंद किया जा रहा है, तो संस्था के प्रति उसका मोहभंग हो जाता है। वे ऐसी जगह जाना पसंद नहीं करते जहाँ उनके काम का सम्मान न बचा हो।

पुराने समय में विश्वविद्यालयों में अकादमिक गुरुओं के प्रति एक शाश्वत सम्मान की भावना होती थी। कुलपति भले ही बदल जाए, लेकिन पूर्व प्रमुखों को मार्गदर्शक माना जाता था। आज की उपभोक्तावादी और अत्यधिक प्रशासनिक अकादमिक संस्कृति में यह परंपराएं दम तोड़ रही हैं।

आज के विश्वविद्यालयों का प्रशासन अक्सर कॉर्पोरेट संस्कृति की तरह काम करता है। यहाँ जो पद पर है, वही उपयोगी है की नीति चलती है। पूर्व कुलपतियों के पास अब कोई प्रशासनिक शक्ति या बजट स्वीकृत करने का अधिकार नहीं होता, इसलिए विश्वविद्यालय का निचला स्टाफ भी उनके प्रति उदासीन हो जाता है।

निष्कर्ष और सुधारात्मक दृष्टिकोण

संक्षेप में कहें तो, विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोह में पूर्व कुलपतियों का सर्वप्रथम आमंत्रित न किया जाना या उनका न आना प्रशासनिक प्रोटोकॉल की मजबूरी, वर्तमान नेतृत्व की असुरक्षा, राजनीतिक विचारधाराओं के टकराव और व्यक्तिगत आत्मसम्मान के आहत होने का परिणाम है। कार्यकाल का बहुत अच्छा होना वर्तमान कुलपति में ईर्ष्या जगाता है, और बहुत खराब होना संस्था के लिए बदनामी का कारण बनता है-दोनों ही सूरतों में दूरी बना ली जाती है।

क्या इसे बदला जा सकता है?

एक स्वस्थ अकादमिक वातावरण के लिए इस संस्कृति को बदलना जरूरी है। विश्वविद्यालयों को चाहिए कि वे: दीक्षांत समारोह में पूर्व कुलपतियों के लिए एक विशेष सलाहकार दीर्घा या सम्मानजनक स्थान आरक्षित करें। दीक्षांत स्मारिका में पूर्व प्रमुखों के योगदान का संक्षिप्त उल्लेख करें।

केवल एक सरकारी पत्र भेजने के बजाय, वर्तमान कुलपति स्वयं या रजिस्ट्रार के माध्यम से उन्हें फोन पर व्यक्तिगत रूप से आमंत्रित करें।

जब तक संस्थाएं अपने अतीत का सम्मान करना नहीं सीखेंगी, तब तक वे भविष्य के छात्रों को नैतिक मूल्य और कृतज्ञता का पाठ नहीं पढ़ा पाएंगी। दीक्षांत समारोह केवल उपाधि बांटने का मंच नहीं, बल्कि संस्थागत निरंतरता और सम्मान का प्रतीक होना चाहिए।

–प्रोफेसर अशोक कुमार,
पूर्व कुलपति कानपुर,
गोरखपुर विश्वविद्यालय,
विभागाध्यक्ष राजस्थान
विश्वविद्यालय जयपुर

"आउवा का धरना : सत्याग्रह का मध्यकाल का एक अनूठा उदाहरण"

बीसवीं शताब्दी में महात्मा गांधी द्वारा सत्याग्रह के दर्शन को प्रतिपादित और लोकप्रिय बनाने से बहुत पहले, राजस्थान की वीर प्रसूता भूमि नैतिक प्रतिरोध और आत्म बलिदान के एक बहुत ही अनूठे आंदोलन की गवाह बन चुकी थी। मारवाड़ के ऐतिहासिक गांव आउवा में सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध (लगभग सन् 1586 और विक्रम संवत 1643) में एक ऐसी असाधारण घटना घटी, जिसे जन मानस की लोक स्मृति में आउवा का धरना के नाम से जाना जाता है। चारण समुदाय के नेतृत्व में हुआ यह आंदोलन अन्याय के विरुद्ध धर्म, त्याग और असहयोग पर आधारित सामूहिक नैतिक विरोध का सबसे पहला दर्ज इतिहास है। यह मात्र एक विरोध प्रदर्शन नहीं था, बल्कि सत्य की एक आध्यात्मिक उद्घोषणा थी, जहाँ स्वयं मानव देह को ही प्रतिरोध का सबसे शक्तिशाली अस्त्र बना दिया गया था।

इस ऐतिहासिक घटना की पृष्ठभूमि मारवाड़ के प्रतापी शासक राव मालदेव के निधन के बाद उत्पन्न हुई राजनीतिक उथल पुथल से जुड़ी है। उनके पुत्र राव चंद्रसेन राठौड़ को अपनों के ही विश्वासघात का सामना करना पड़ा, जब उनके भाई ने मुगल सम्राट अकबर की सहायता से सत्ता पर अधिकार कर लिया। चंद्रसेन ने इस अन्याय के विरुद्ध सन 1581 में अपनी मृत्यु तक संघर्ष जारी रखा। नीति, नैतिकता, काव्य और क्षित्रय चेतना के पारंपरिक संरक्षक होने के नाते चारण समुदाय इस घोर अन्याय को सहन न कर सका। राजपूत राजव्यवस्था में विवेक तथा चेतना के प्रहरी और प्रेरणा के स्त्रोत माने जाने वाले चारणों के लिए धर्म और परम्परा से चली आ रही शन्यायसंगत व्यवस्था का यह उल्लंघन पूरी तरह असहनीय और अस्वीकार्य था। मध्यकालीन राजस्थान में चारण समुदाय का स्थान अत्यंत विशिष्ट और सम्मानित था। वे केवल कवि या दरबारी नहीं थे, बल्कि युद्धरत कुलों के बीच मध्यस्थता करने वाले नैतिक निर्णायक, मान मर्यादा व वंशावली स्मृति के संरक्षक तथा महत्वपूर्ण संधियों के कूटनीतिक गारंटर हुआ करते थे। जब भी न्याय की रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ती, वे सहर्ष आत्म बलिदान करने से भी पीछे नहीं हटते थे। उनके वचनों की पवित्रता और महत्ता ऐसी थी कि तत्कालीन शासक भी उनका उल्लंघन करने से डरते थे। अमूमन अन्याय को रोकने के लिए उनके द्वारा आत्म बलिदान की केवल चेतावनी देना ही पर्याप्त होता था, परंतु आउवा का यह घटनाक्रम सर्वथा भिन्न और अभूतपूर्व था, जहाँ वह चेतावनी एक भीषण और ऐतिहासिक यथार्थ में बदल गई।

जब चारणों ने इस अन्याय के विरोध में मारवाड़ छोड़ने का निश्चय किया, तब पाली के प्रभावशाली ठाकुर गोपाल दास चांपावत ने उन्हें आउवा में ही रहकर धरना देने के लिए प्रेरित किया। इस ऐतिहासिक धरने के लिए सूकड़ी नदी के तट पर स्थित पवित्र काजलेश्वर महादेव मंदिर के प्रांगण को चुना गया। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी से शुरू हुआ यह उपवास पूर्णिमा तक चलने वाला था, परंतु तीसरे दिन से ही इस आंदोलन ने एक अत्यंत भावुक और मर्मस्पर्शी मोड़ ले लिया। चारणों ने धर्म की रक्षा के लिए अनुष्ठानिक रूप से त्रागा (आत्म उत्पीड़न) और तेलिया (आत्मदाह या देह बलिदान) शुरू कर दिया। ये आत्मघाती कदम किसी आवेग का परिणाम नहीं थे, बल्कि नैतिक विरोध की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करने वाले पवित्र अनुष्ठान थे। इस धरने की नैतिक तीव्रता इतनी प्रचंड थी कि जो लोग इस आंदोलन को रोकने और समझाने आए थे, जैसे प्रसिद्ध कवि आखा बारहठ, वे भी इस पावन उद्देश्य से प्रभावित होकर इसी धरने में सम्मिलित हो गए और सहर्ष आत्म बलिदान देकर अमर हो गए। यद्यपि आधुनिक दौर का गांधीवादी सत्याग्रह शारीरिक हिंसा और आत्म पीड़न को पूरी तरह से नकारता है, फिर भी अन्याय के विरुद्ध आत्मिक और नैतिक बल का प्रयोग करने का मूल सिद्धांत दोनों में अद्भुत रूप से समान है। इस दृष्टिकोण से आउवा का धरना भारतीय परंपराओं में रचे बसे प्रतिरोध का एक आदि सत्याग्रह है। लोक परंपराओं और ऐतिहासिक वृत्तांतों के अनुसार, इस धरने में सैकड़ों चारणों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी। कुछ विवरण तो यहाँ तक बताते हैं कि विरोध की निरंतरता और तीव्रता को बनाए रखने के लिए प्रतिदिन दो व्यक्ति अपने प्राणों की आहुति देते थे। यह आधुनिक विरोध प्रदर्शनों की तरह किसी समझौते या मोल तोल की मंशा से प्रेरित नहीं था, बल्कि यह एक ऐसा मार्ग था जहाँ से पीछे लौटने का कोई विकल्प नहीं था। यह इस बात की साक्षात घोषणा थी कि जीवन की कीमत पर भी अन्याय को कभी स्वीकार नहीं किया जाएगा। आउवा का धरना भारतीय इतिहास के सबसे गौरवशाली, किंतु भुला दिये गये अध्यायों में से एक है। इसकी महत्ता इस बात में निहित है कि इसने सत्ता और शक्ति के ऊपर धर्म की सर्वोच्चता को स्थापित किया। यह आंदोलन सत्य और सम्मान के प्रति चारण समुदाय की अद्वितीय प्रतिबद्धता को दर्शाता है और औपनिवेशिक आख्यानों से सदियों पहले सामूहिक प्रतिरोध का एक स्वदेशी मॉडल प्रस्तुत करता है। यह इस तथ्य को भी पुष्ट करता है कि सत्याग्रह का विचार भारत के लिए कोई आयातित दर्शन नहीं था, बल्कि इसके गहरे बीज हमारी अपनी मिट्टी में पहले से ही मौजूद थे।

सार रूप में आज जब भी हम सत्याग्रह की बात करते हैं, तो स्वाभाविक रूप से महात्मा गांधी का स्मरण होता है। परंतु इतिहास के पन्नों को पलटें तो सदियों पहले आउवा के शांत वातावरण में एक अकेले समाज ने यह सिद्ध कर दिया था कि सत्य के लिए अविचल खड़े होने का वास्तविक अर्थ क्या होता है। मारवाड़ के उन चारणों ने आउवा में केवल विरोध नहीं दर्ज कराया, बल्कि अपने कष्ट उठाकर भी बलिदान को एक ऐसे अचूक नैतिक अस्त्र में बदल दिया जिसने तत्कालीन निरंकुश सत्ता को अपने अंतःकरण का सामना करने के लिए विवश कर दिया। आउवा के धरने को याद करना वास्तव में इस बात को स्वीकार करना है कि भारतीय सभ्यता ने हमेशा सत्ता बल पर आत्मबल और धर्म की विजय को सर्वोपरि माना है। यह एक ऐसा पावन प्रसंग है जो केवल इतिहास में दर्ज होने के लिए नहीं, बल्कि हर भारतीय के हृदय में पूजे जाने के योग्य है।

–मूल लेख लेफ्टिनेंट जनरल दलीप सिंह (सेवानिवृत्त), 'राव' शिवराज पाल सिंह द्वारा हिन्दी में रूपांतरित।

राशिफल मंगलवार 23 जून, 2026

पंडित अनिल शर्मा

द्वितीय ज्येष्ठ मास (शुद्ध), शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि, मंगलवार, विक्रम संवत 2083, हस्त नक्षत्र दिन 11:54 तक, वारियान योग दिन 10:13 तक, कौलव करण सायं 4:40 तक, चन्द्रमा रात्रि 12:53 पर तुला राशि में संचार करेगा।

ग्रह स्थिति: सूर्य-मिथुन, चन्द्रमा-कन्या, मंगल-वृष, बुध-कर्क, गुरू-कर्क, शुक्र-कर्क, शनि-मीन, राहु-कुम्भ, केतु-सिंह

आज रवियोग दिन 11:54 से आरम्भ होगा। आज श्री महेश नवमी, श्री हरि जयन्ती, महेश्वरी नवमी है।

श्रेष्ठ चौघड़िया: चर 9:03 से 10:46 तक, लाभ अमृत 10:46 से 2:12 तक, शुभ 3:54 से 5:37 तक।

राहूकाल: 3:00 से 4:30 तक। सूर्योदय 5:38, सूर्यास्त 7:20

मेष

परिवार में चल रहे आपसी मतभेद दूर होने लगेंगे। विवादित मामलों से राहत मिल सकती है। अस्त-व्यस्त दिनचर्या में सुधार होगा। परिवार में सुख-शांति बनी रहेगी।

वृष

व्यावसायिक कार्यों में प्रगति होगी। अटके हुए व्यावसायिक कार्य बनने लगेंगे। व्यावसायिक आय में वृद्धि होगी। आर्थिक स्थिति ठीक रहेगी। आज समय रचनात्मक कार्यों में व्यतीत होगा।

मिथुन

घर-परिवार में अतिथियों का आगमन बना रहेगा। परिवार में उत्सव जैसा माहौल रहेगा। सुख-सुविधाएं बढ़ेगी। व्यावसायिक सफलता से मनोबल ऊंचा रहेगा।

कर्क

परिवार में मन को प्रसन्न करने वाले संदेश प्राप्त होंगे। परिजनों के सहयोग से वर्तमान समस्या का समाधान हो सकता है। व्यावसायिक/आर्थिक स्थिति ठीक रहेगी।

सिंह

आर्थिक/वित्तीय मामलों में संतुलन बना रहेगा। संभावित स्त्रोत से धन प्राप्त होगा। व्यावसायिक यात्रा संभव है। नौकरीपेशा व्यक्तियों को अतिरिक्त जिम्मेदारी मिल सकती है।

कन्या

आर्थिक/वित्तीय मामलों के लिए दिन अच्छा रहेगा। आय में वृद्धि होगी। अटका हुआ धन प्राप्त होगा। व्यावसायिक कार्यों के लिए दिन अच्छा रहेगा।

तुला

व्यावसायिक कार्यों के कारण भागदौड़ रहेगी। नौकरीपेशा व्यक्तियों को उच्चाधिकारियों की नाराजगी का सामना करना पड़ सकता है। घर-गृहस्थी के खर्चों में अनावश्यक वृद्धि हो सकती है।

वृश्चिक

आर्थिक/वित्तीय मामलों में आ रही अड़चनें दूर होने लगेंगी। आय में वृद्धि होगी। व्यावसायिक कार्यों में व्यस्तता बनी रहेगी। धार्मिक स्थान की यात्रा संभव है।

धनु

व्यावसायिक कार्यों में प्रगति होगी। महत्वपूर्ण कार्य योजना का क्रियान्वयन हो सकता है। व्यावसायिक कार्य शीघ्रता/सुगमता से बनने लगेंगे। परिवार में अतिथियों का आगमन बना रहेगा।

मकर

व्यावसायिक संपर्क बनेंगे। व्यावसायिक वार्ता सफल रहेगी। व्यावसायिक अनुबंध प्राप्त होंगे। आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। परिवार में धार्मिक-मांगलिक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं।

कुंभ

चन्द्रमा अष्टम भाव में शुभ नहीं है। शुभ कार्यों में व्यवधान हो सकता है। आज आवश्यक कार्यों में विलम्ब हो सकता है। खान-पान के कारण स्वास्थ्य खराब हो सकता है। यात्रा टालना ठीक रहेगा।

मीन

परिवार में आपसी सहयोग-समन्वय बना रहेगा। परिवार में आपसी सहयोग से वर्तमान समस्या का समाधान हो सकता है। आजल परिवार में शुभ-मांगलिक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं।